*** अनुक्रमणिका ***

[१] प्रथम अध्याय : "एकांकी सिद्धांत और प्रकार"

[२] द्वितीय अध्याय : "अभिनय स्वरूप निर्धारण एवं अंग"

[३] तृतीय अध्याय : "मोहन राकेश के एकांकियों का कथ्य"

[४] चतुर्थ अध्याय : "मोहन राकेश के एकांकियों में अभिनेयता"

उपसंहार :

टिप्पणियाँ :

संदर्भ सूची :

"अध्याय पहला"

एकांकी सिद्धांत और प्रकार।

[१] एकांकी का उद्भव :-

आज का आधुनिक मानव विज्ञानसे लिप्टा हुआ है, जिससे उसके जीवनने शिघ्रता का रूप लिया है। परिणाम स्वरूप उसके जीवन में संघर्ष इतना बढ़ गया है कि, मानव को जीविका के साधन जुटाना भी कठीन-सा बन गया है। अत: मानव परिवार के भरण पोषण में व्यस्त दिखाई देता है। एकांकी के उदय में यही व्यस्तता और समयाभाव है। मानव अपना मनोरंजन भी कम समय और कम खर्च में करना चाहता है। समयाभाव के कारण ही दीर्घकाम साहित्यिक रचनाओं के प्रति आकर्षन घटता जा रहा है, अरूचि उत्पन्न हो रही है। साथ ही "आज का मनुष्य नवीनता का पुजारी है, वह सदैव नयी-नयी चीजों के निर्माण में रस लेता आया है। अत: चिर नविनता की आकांक्षा करनेवाले परिवर्तनशील मस्तिष्क ऐसे साहित्यिक कृतियों के अविष्कार में लग गये हैं जो अल्पकाल में मनोरंजन करा दे और जीवन निर्माण में कुछ सहायता भी प्रदान करें। अत: ऐसे साहित्यिक कृतियों का जन्म हुआ, जो आकार में संक्षिप्त होते हुए भी अपने अतिरिक्त सौन्दर्य और आकर्षन को स्थिर रख सके। महाकाव्यों में खण्डकाव्य, उपन्यासों से कहानियाँ, और नाटकों से एकांकीयों का निर्माण हुआ।"[१]

"अंग्रेज परिचय" के लेखक ने इस संबंध में बडे सुन्दर ढंग से लिखा है - "आज के व्यस्त जीवन के बीच साहित्यकारने कम से कम समय में अधिक अनुरंजन का उत्तरदायित्व अपने उपर लिया है। साथ ही आज के जीवन में जो अनेक समस्याएँ हैं, एक ही स्थानपर गिरी हुई पतंग की डोर की भाँति उलझी हुई है, उन्हें गहरी दृष्टिसे देखकर सतर्क उँगलियों से सुलझाने की कुशालता भी एकांकी नाटक में है। यह एकांकी जीवन के मध्यान्ह का सूर्य नहीं है, जिसकी किरणें देखी नहीं जा सकती, यह तो प्रभातकालीन बाल रवि है, जिसकी किरने घटनाओं के बादलों में से निकलकर उन्हे वसंतकालीन फूलों की भाँती रँगती हैं और अलग-अलग दिखाई देकर जीवन के आकाश में समा जाती है .... मंच का सरलीकृत आकर्षण कम समय में अधिक से अधिक अनुरंजन, घटना और पात्रों की

-हृदयस्पर्शिनी क्रिया और प्रतिक्रिया और घटना तथा पात्र की मनोभूमी पर खड़े होकर हिमतुंग की भाँति जीवन की उँचाई देखने का नेत्रोत्तोलन एकांकी में ही है।.... मंचपर जीवन को क्रियाशील बनाने की अद्भुत शक्ति एकांकी में है, जो युगों की टीस आँसुओं में और युगों का विनोद मुस्कान में प्रकट करके आपके सामने जीवन का रहस्य प्रदर्शनी की भाँति सुसज्जित कर देता है।"[२] संक्षिप्त में एकांकी के निर्माण में यही मूल कारण हो सकता है।

आज अनेक विद्वान एकांकी को पश्चिम की देन मानते हैं। यह सर्वथा सत्य नहीं है। हम आज एकांकी साहित्यपर पश्चिम का प्रभाव जरूर मानते हैं परंतु उसकी देन मानना एक भूल-सी हो सकती है। यदि संस्कृत के और आज के एकांकीयों को देखा जाय तो निश्चित ही अन्तर दिखाई देता है, किन्तु यह भेद उपरी है। एकांकी का मूलरूप संस्कृत एकांकी में ही है। आचार्य भरत मुनिने अपने नाट्यशास्त्र में रूपकों का अत्यंत सूक्ष्म विवेचन किया है। वस्तुत: हम जिसे नाटक कहते हैं, वह रूपक शब्द के लिए रूढ हो गया है। रूपक के संस्कृत साहित्य में हमें दस भेद दिखाई देते हैं - नाटक, प्रकरण, भाण, प्रहसन, डिम, व्यायोग, समवकार, वीथी, अंक और इहामृग इसमें नाटक सर्वप्रधान भेद है। यदयपि नाटक रूपक का एक भेद हैं।

उपर रूपक के जो प्रधान दस भेद हैं, उनमें भाण, व्यायोग, अंक, वीथी और प्रहसन निश्चित ही एकांकी कहा जा सकता है। संस्कृतमें जैसे अनेक अंकधारी नाटक मिलते हैं, जैसे महाकवि भास का उरुभंग, निलकंठ का कल्याण, सौगधिक आदि का संबंध आधुनिक एकांकीयों से जोडा जा सकता है। हाँ, आज भारतीय एकांकीयोंपर पश्चिम का प्रभाव जादातर हो रहा है, यह हम स्विकार कर सकते हैं।

आमतौरपर देखा जाय तो पाश्चात्य एकांकी साहित्य अत्याधिक पुराना नहीं हैं। वह भी आधुनिकता की देन ही मानी जा सकती है। पाश्चात्य एकांकी के विकास की बडी रोचक कहानी है। युरोप में उन दिनों बडे-बडे और लंबे नाटक खेले जाते थे, जो काफी रात तक चलते थे। परिणामस्वरूप दर्शक भोजनोपरान्त विलंब से नाट्यशाला में प्रवेश करते थे, तब आयोजकों के सम्मुख समस्या उत्पन्न होती थी कि, जो दर्शक पहले आए है उनके लिए क्या किया जाय ? प्रस्तुत समस्या सुलझाने के उत्तर में प्रारंभ में वहाँ एकांकी समय की पूर्ती के लिए खेले जाने लगे। जिससे पहले आए दर्शकों का मनोरंजन भी होने लगा और दर्शकों को व्यस्त रखने में भी सफलता मिली। तब से

आयोजकोंने मुख्यनाटक के पहले कुछ साधारण कोटी के नाटक प्रस्तुत करने लगे। ऐसेही छोटे नाटकों को Curtain Raisers अर्थात "यवनिका उत्थापक" कहने लगे। यही कर्टन रेझर्स आगे चलकर "एकांकी" के रूपमें विकसीत हुए है। "एक समय जब लुई एन पाकर्स ने श्री जैकब की कहानी "बन्दर का पंजा" को कर्टन रेझर्स के रूप में प्रस्तुत किया, तो उपस्थित दर्शक इतने आनंद विभोर हो उठे कि, वे प्रधान नाटक को देखे बिना ही रंगशाला से बाहर निकल गये।"[3]

[२] एकांकी की परिभाषा

साहित्य के विभिन्न रूपों में नाटक अपनी एक स्वतंत्र पहचान रखता है। नाटक श्रव्यकाव्य ही नहीं बल्कि दृश्यकाव्य भी है। तत्वत: नाटक में क्रिया-कलाप अर्थात अभिनय दर्शन महत्वपूर्ण अंग है। प्रत्यक्ष क्रिया-व्यापार के प्रदर्शन के कारण ही नाटक अन्य साहित्यिक विधाओं के तुलना में ज्यादातर प्रभावोत्पादक है।

साहित्य के दृश्यकाव्य और श्रव्यकाव्य ये दो महत्वपूर्ण रूप माने जाते हैं। दृश्यकाव्य के अंतर्गत सिर्फ नाटक आता है, तो श्रव्यकाव्य के अंतर्गत कविता, कहानी, उपन्यास आदि रूप सम्मिलीत हैं। साहित्य के दोनों रूपो में समाज और मानव जीवन का चित्रण होता है। परंतु श्रव्यकाव्य का संबंध सिर्फ कानोंसे हैं। नाटक पढ़ा भी जाता है और देखा भी जाता है। एकांकी तो नाटक का छोटा भाग हैं। इस दृष्टिसे देखा जाए तो नाटक के बराबर ही इसका स्थान महत्वपूर्ण है। एकांकी वह नाटक है जो एक अंक में ही पूर्णत्व प्राप्त करता है इसलिए यही एकांकी की सरलतम परिभाषा मानी जानी चाहिए। फिर भी इसे स्पष्टता से समझने के लिए मान्यवर विद्वतजनों की परिभाषा देखना अनिवार्य है। वैसे देखा जाय तो साहित्य की किसी भी जीवन्त विधा को उसके समस्त लक्षणों के साथ परिभाषित करना असंभव है। फिरभी एकांकी के लक्षणों एवं स्वरूप को विस्तारता से समझने के लिए विद्वत गणों की परिभाषाएँ एवं विचारों को देखना जरूरी है।

* अँग्रेजी विद्वानों की परिभाषाएँ एवं विचार *

अँग्रेजी विद्वान पर्सिवल वाइल्ड एकांकी के संबंध में अपने विचार इसप्रकार प्रकट करते हैं, "एकांकी नाटक जीवन की विशेषता उच्चकोटी की अन्विति एवं मितव्ययिता में हैं., यह अपेक्षाकृत कम अवधि में अभिनित होने के लिए होता है और

होता है अपनी समग्रता में ग्रहण किए जाने के लिए।"[४]

ब्लैकपोर्ट ने कहा है कि, "एकांकी पहले एक दृश्य का ही नाटक हुआ करता था, पर आज एकांकी नाटक के संबंध में, यदि अधिक निश्चितस्पेण कहा जाय तो वह है पाँच मिनिट से लेकर एक घंटे के अवधि में से कहीं का भी हो सकता है।"[५]

कोजलेन्को कहते हैं कि, "एकांकी के लिए एक ही दृश्य का होना आवश्यक नहीं है।"[६]

इन परिभाषाओं एवं विचारों के आधारपर हम एकांकी के संबंध में कुछ अपने निश्चित विचार प्रस्तुत कर सकते हैं। पहली बात यह है कि, एकांकी एक दृश्य काव्य भी हो सकता है और अनेक दृश्य का भी। दुसरी बात यह है कि, इसकी विशेषता इसके छोटे रूप एवं संक्षिप्तता में है। तिसरी बात यह है कि, अभिनय अवधि के दृष्टि से यह पाँच मिनिट से लेकर एक घंटे तक हो सकता है। इसके कार्यव्यापार में सघनता और अन्विति आवश्यक है और जीवन की किसी एक समस्या या प्रसंग को लेकर ही एकांकी का निर्माण होता है।

उपरोक्त विचारों को सम्मिलित करके हम एकांकी की परिभाषा इसप्रकार बना सकते हैं, "एकांकी वह है जो पाँच मिनिट से लेकर एक घंटे की अवधि में जीवन के किसी एक प्रसंग अथवा समस्या को लेकर कार्यव्यापार की सघनता और अन्विति के साथ एक या अनेक दृश्यों में रंगमंचपर अभिनित किया जाता है उसे एकांकी कहते है।"

* संस्कृत विद्वानों की परिभाषाएँ एवं विचार *

संस्कृत साहित्य में एकांकी नाटकों की रचना हुई है अवश्य, पर साहित्यशास्त्र में उनके स्वरूप विधानपर स्वातंत्र्यरूपसे विचार नहीं हुआ है। दृश्यकाव्य के व्यापक विवेचन के अंतर्गत ही उसका परिचय दिया गया है। "हम संस्कृत के छोटे-बड़े विविध नाटकों में केवल शैली भेद पाते हैं। उनमें टेकनीक का अन्तर तो है, पर सिद्धांत का अन्तर नहीं है और इसलिए संस्कृत नाटय साहित्यमें एकांकी का मुल्यांकन नाटक के अंतर्गत होता है।"[७] अत: हम यह कह सकते हैं कि रूपक, उपरूपक के नियम ही एकांकी पर लागू होते हैं।

प्राचीन भारतीय नाट्य साहित्य बहुत समृद्ध रहा है। विषय और आकार की दृष्टि से अनेक प्रकार के नाटकों की रचना संस्कृत में हुई है और उनका विवेचन भी आचार्योंने बडी सूक्ष्मता और विस्तार से किया है। उन्होने नाटक के जो भेद बतलाए हैं, उनमें कई एकांकी भी है। यह भेद सिर्फ बाह्य रूपरेखा के आधारपर नहीं, बल्कि नाटक के मूलतत्वों के आधारपर दिखाई देता है। डा. श्यामसुंदर दास कहते है, "रूपकों के जो भेद किए गए हैं, वे तीन आधारोंपर स्थित है, वस्तु, नेता और रस। इन्हे ही रूपक के तत्व भी कहते है।"[८]

आचार्य धनंजय ने "दशरूपक" में रूपक के दस भेद बतलाए हैं। "नाटक सप्रकरणं भाण: प्रहसनं डिम। व्यायोग समवकरि विथ्यंकेहमृगा इति।।"[९] अर्थात इनमें नाटक, प्रकरण, भाण, प्रहसन, डिम, व्यायोग, समवकर, वीथि, अंक और इहामृग ये दस भेद हैं। इन दस भेदों में, भाण, प्रहसन, व्यायोग, वीथि, और अंक निश्चित एकांकी है।

उपरोक्त दस भेदो में से अंक की परिभाषा करते हुए साहित्य दर्पनकार विश्वनाथ लिखते हैं - "अंक नाटक का अवच्छेद अथवा अन्तर्विभाग है, जिसमें पदयों की भरमार नहीं हुआ करती, जिसमें नायकादि के नित्यादि कर्मों के अनुष्ठान के कार्यों का निरूपण नहीं किया जाता, जिसमें ऐसी कथा की रचना नहीं हुआ करती जो कई दिनों तक चलती रहें, जिसमें नायक चरित्र साक्षात चरित न होनेपर भी यत्र-तत्र सभी व्यंग्य रूपसे विराजमान रहा करता है, जिसमें तीन या चार पात्रों के अभिनय का आनंद लिया जा सकता हैं।"[१०]

अत: हम यह कह सकते हैं कि, अंक रूपकों के अवच्छेद अथवा अन्तर खण्ड का नाम है। जैसे "श्रव्यकाव्य" का चिन्ह उसका सर्ग विभाग है, वैसे दृश्य काव्य का चिन्ह उसका अंक विभाग है।

उपरोक्त पाश्चात्य और प्राचीन भारतीय विद्वानों के विचारों को सूक्ष्मता से देखनेपर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि, पाश्चात्य विद्वानोंने एकांकी की ऐसी अलग परिभाषा देने की कोशीश की है, परंतु प्राचीन भारतीय विद्वानोंने एकांकी संबंधी अलग परिभाषा अथवा विचार प्रस्तुत नहीं की है। बल्कि नाटक के साथ अन्य जो छोटे-छोटे रूपक हैं, जैसे, भाण, प्रहसण, व्यायोग और अंक ही एकांकी के रूप हैं।

* हिन्दी विद्वानों की परिभाषाएँ एवं विचार *

हिन्दी के एकांकीकार तथा विद्वनों ने यह स्विकृत किया है कि, एकांकी का विकास पश्चिम से प्रेरित है। फिर भी उन्होने एकांकी संबंधी की हुई परिभाषाओं को देखने में कोई हर्ज नहीं है।

सद्गुरुशारण अवस्थी ने एकांकी की परिभाषा देते हुए लिखा है, "एकांकी नाटक का सुनिश्चित और संकल्पित एक लक्ष्य होता है। उसमें केवल एक ही घटना, परिस्थिति अथवा समस्या प्रबल होती है। कार्यकारण की घटनाएँ अथवा कोई गौण परिस्थिति अथवा समस्या का उसमें स्थान नहीं होता। एकांकी नाटक वेगसंपन्न प्रवाह में किसी प्रकार के अन्तर प्रवाह के लिए अवकाश नहीं होता। कथावस्तु, परिस्थिति, व्यक्तित्व इन सबके निर्देश में मितव्ययता और चातुरी का जो रूप अच्छे एकांकी नाटकों में मिलता है वह साहित्य कला की अद्वीतीय निधि है।"[११]

दशरथ ओझा के अनुसार – "जो नाटक एक अंक में समाप्त होनेवाला, एक सुनिश्चित लक्ष्यवाला, एक ही घटना एक ही परिस्थिति और एक ही समस्यावाला हो और जिसके प्रवेश में कौतुहल और वेग, गति में विद्युत सी वक्रता और तेजी, विकास में एकाग्रता और आकस्मिकता के साथ चरमसीमा तक पहुँचने की व्यग्रता हो और जिसका पर्यवसान चरमसीमा पर ही प्रभाव की तीव्रता के साथ हो जाता है, जिसमें प्रासंगिक कथाओं का प्राय: निषेध घटनाओं की विविधता का निवारण तथा चारित्रिक प्रस्फुटन में आदि,मध्य और अवसान का वर्णन हो उसे एकांकी कहना चाहिए।"[१२]

डॉ. सत्येंद्र के मतानुसार, "एकांकी में एकही अंग होना चाहिए और एक ही दृश्य। उसमें स्थान व काल का संकलन होना चाहिए। एकांकी स्वतंत्र टेकनीकवाला साहित्य का भेद है। उसमें स्थान, काल और व्यापार के संकलन मिलने चाहिए।"[१३]

उदयशंकर भट्ट के मतानुसार, "एकांकी नाटक में जीवन का एक अंश, परिवर्तन का एक लक्षण, सब प्रकार के वातावरण से प्रेरित एक झोंका, दिन में एक घण्टे की तरह मेघ में बिजली की तरह, बसंत में फूल के हास की तरह व्यक्त होता है।"[१४]

प्रो. रामचरण महेन्द्र के मतानुसार, "एकांकी मानव जीवन के एक पहलू या उद्दीप्त का चित्र है। प्रत्येक की एक मूल विचार [Idea], समस्या [Problem], एक सुनिश्चित लक्ष्य [Aim] एक ही महत्वपूर्ण घटना और विशेषपरिस्थितिपर निर्मित हो सकता हैं।"[१५]

डॉ. नगेन्द्र के मतानुसार, "स्पष्टतया एकांकी एक अंक में समाप्त होनेवाला नाटक है। और यद्यपि इस अंक के विचार के लिए कोई विशेष नियम नहीं है, फिर भी छोटी कहानी की तरह उसकी सीमा तो है ही। - एकांकी में हमें जीवन का क्रमबध्द विवेचन न मिलकर उसके एक पहलू एक महत्वपूर्ण घटना, एक विशेष परिस्थिति अथवा एक उद्दीप्त क्षण तक का चित्र मिलेगा। उसके लिए एकता एवं एकाग्रता अनिवार्य है। एकाग्रता में आकस्मिकता अपने आप आ जाती है। स्थान और काल की एकता का निर्वाह किए बीना भी सफल एकांकी की रचना हो सकती है।"[१६]

डॉ. रामकुमार वर्मा के मतानुसार, "एकांकी में एक ही घटना होती है, और वह नाटकीय कौशल से ही कौतुहल का संचय करते हुए चरमसीमातक तहुँचाती है। उसमें कोई अप्रधान प्रसंग नहीं होता। विस्तार के अभाव में प्रत्येक घटना कली की भाँति खिलकर विकसीत होती है, उसमें लता के समान फैलने की उच्छृंखलता नहीं होती... । उसके प्रारंभिक वाक्य में ही कौतुहल व जिज्ञासा की अपरिमित शक्ति भरी रहती है। कथानक क्षिप्रगति से आगे बढ़ता है और एक-एक घटना भावना को घनीभूत करते हुए कौतुहल के साथ चरमसीमा में चमक उठती है। इसी घनीभूत घटनावरोह में चरमसीमा विद्युत की भाँति गतिशील होकर आलोक उत्पन्न करती है। और नाटककार समस्त वेग से बादल की भाँति गर्जन करता हुआ नीचे आता है। प्रवेश कौतुहल की वक्र गतिसे होता है। घटनाओं की व्यंजना उत्सुकता से लम्बी हो जाती है फिर घटना में घनीभूत तरंगें आती है, जो कौतुहल से खींचकर चरमसीमा में परिणात होती है। यहाँ एकांकी की समाप्ति हो जानी चाहिए।"[१७]

गुजराती विद्वान जशवंत शेखडीवाला के मतानुसार, "एकांकी अर्थात एक अंक का नाटक जिसमें प्रेरक प्रारम्भ, विकास तथा लक्ष्य की ओर गतीशील कथानक, एक प्रमुख घटना, रस की अभिव्यक्ति करता हुआ सुश्लिष्ठ वस्तुसंयोजन, आन्तर बाह्य संघर्ष, जीवन पात्रसृष्टि, वैविध्यपूर्ण तथा प्रभावोत्पादक संवाद, स्थल काल का ऐक्य, जीवंत वातावरण आकस्मित चमत्कृतिपूर्ण अंत, भाव की पराकाष्ठा तथा अभिनय दृश्य आदि का सविस्तर रंगनिर्देश होता हैं।"[१८]

उपरोक्त विद्वानों की परिभाषाएँ एवं विचारों को समग्रस्प में सम्मिलित कर दे तो हमें अ कुछ निम्नलिखित एकांकी के लक्षण दिखाई देते हैं।

१] एकांकी का एक सुनिश्चित उद्देश्य होता है। इस लक्षण को उदयशंकर भट्टने बडे ही सुंदर ढंग से अभिव्यक्त किया है - "वह निशाना करने के लिए दुर्योधन और युधिष्ठिर की तरह तिर और पंख नहीं देखता। वह बाणसे चिड़ीया की आँख बेधनेवाले अर्जुन की तरह एकाग्रता, तन्मयता का ध्येय लेकर चलता है।"[१९]

२] एकांकी में जीवन के किसी एक पक्ष, प्रसंग अथवा घटना या समस्या का चित्रण होता है। अनेक प्रसंगो या घटनाओं का एकांकी में स्थान नहीं।

३] एकांकी प्रारंभिक अंश में ही कौतुहल और जिज्ञासासे शुरू होती है और चरमसिमा के होते ही खत्म होती है।

४] कथोपकथन एकांकी के प्राण है। उनमें मार्मिकता एवं स्वाभाविकता तथा यथासंभव वे पात्रानुकूल हो।

५] संकलन त्रय अर्थात स्थान, समय व कार्य की एकता। इनमें से कार्य की एकता आवश्य हो, यदि संकलन त्रय का ऐक्य हो तो सर्वोत्तम है।

६] एकांकी की अवधि आधे घण्टे से लेकर पैतालीस मिनिट तक ही हो।

७] संक्षिप्तता और एकात्मता एकांकी की प्रमुख विशेषता है।

८] भाषा में आकर्षण और प्राजंलता होनी चाहिए। यथासंभव पात्रानुकूल हो। पात्रों के सुक्ष्मतम भावों को व्यक्त करनें में वह पूर्ण समर्थ हो।

उपरोक्त संस्कृत, हिन्दी, मराठी, गुजराती आदि भारतीय विद्वान तथा पाश्चात्य विद्वानों के विचारों का तुलनात्मक अध्ययन करने के बाद हमारी कुछ धारणाएँ बन जाती है। जैसे कि -

भारत की प्राचीन तथा संस्कृत एकांकी, संस्कृत नाटक से अलग अपना कोई ऐसा विशिष्ठ रूप नहीं दिखाती। संस्कृत की जो एकांकी है वह नाटक का ही एक रूप है। जिसकी शुरुवात, प्रारंभ में सुत्रधार, नट आदि आते हैं, मंगलसुचक कार्य संपन्न करते है और नाटक का परिचय देते हैं तथा आनेवाली घटना का संकेत करते हैं, और बादमें अभिनय शुरु होता है।

परंतु यदि भारतीय [आधुनिक] हिन्दी एवं प्रादेशिक भाषाओं के विद्वानों के विचारों को सूक्ष्मता से परखा जाय, तो उन सभी विद्वानों पर पाश्चात्य एकांकी

तत्वों का प्रभाव दिखाई देता है। जैसे, एकांकी किसी एकही घटना अथवा समस्या या प्रसंगपर आधारित होती है। एकांकी में संकलनत्रय का निश्चित रूपसे विचार किया जाता है, एकांकी की शुरुवात कौतुहल से या जिज्ञासा से शुरू होकर चरमसिमा के आते ही खत्म होती है आदि। अर्थात हिन्दी तथा अन्य भारतीय प्रादेशिक भाषाओं के विद्वानों के विचार पाश्चात्य विद्वानों के विचारों से प्रभावित तथा समान है।

[३] एकांकी : तत्व और विशेषताएँ :-

आज-कल एकांकी से आधुनिक एकांकी का ही बोध होता है। जब तक प्राचीन एकांकी या संस्कृत एकांकी न कहा जाय, तब तक इसका यही अर्थ किया जाता है। आधुनिक एकांकी से हमारा तात्पर्य उस एकांकी से है, जो पिछले कुछ ही दशकों से हिन्दी में रचित होता आ रहा है। संस्कृत एकांकी की शैली से इसमें भिन्नताएँ है। इसका निर्माण हिन्दी की अपनी शक्ति से भी हुआ है, पर इसमें विशेष योग अँग्रेजी के एकांकी साहित्य का है। एकांकी नाटकों के टेकनीक का उत्कर्ष विशेष रूपसे अँग्रेजी साहित्य में हुआ है। साथ ही इस विषयपर पाश्चात्य साहित्य में विशेष विवेचन हुआ है। यद्यपि संस्कृत नाट्यशास्त्र में इसके शिल्प के उपकरण वर्तमान है, तथापि आधुनिक हिन्दी साहित्य में उन उपकरणों में नयी प्रणालियों का समावेश किया गया है।

डॉ. रामकुमार वर्मा ने एकांकी के संबंध में अपने विचार इन शब्दो में प्रकट किया हैं - "एकांकी नाटक में अन्य प्रकार के नाटकों से विशेषता होती है। उसमें एकही घटना होती है और वह घटना नाटकीय कौशाल से ही कौतुहल का संचय करती हुई चरमसीमा [climax] तक पहुँचती है। उसमें कोई अप्रधान प्रसंग नहीं रहता। एक-एक वाक्य और एक-एक शब्द प्राण की तरह आवश्यक रहते है। पात्र चार या पाँच ही होते है जिनका संबंध नाटक की घटना से संबंध रहता है। वहाँ केवल मनोरंजन के लिए अनावश्यक पात्र की गुंजाईश नहीं। प्रत्येक व्यक्ति की रूपरेखा पत्थरपर खिंची रेखा का भाँति स्पष्ट और गहरी होती है। विस्तार के प्रभाव में प्रत्येक घटना कली की भाँति खिलकर पुष्प के भाँति विकसीत हो उठती है। उसमें लता के समान फैलने की उच्छृंखलता नहीं। घटना के प्रत्येक भाग का संबंध मनुष्य शरीर के हाथ पैरों के समान है, जिसमें अनुपात विशेष से रचना हो कर सौंदर्य की सृष्टि होती है। कथावस्तु

भी स्पष्ट और कौतुहल से युक्त रहती है और उसमें वर्णनात्मक की अपेक्षा अभिनयात्मकता तत्व की प्रधानता रहती है। इस प्रकार की रचना साधारण नाटक की रचना से कठीन है। उसमें विस्तार के लिए अवकाश नहीं है।"[२०]

डॉ. नगेन्द्र के विचार इस प्रकार हैं, "एकांकी हमें जीवन का क्रमबध्द विवेचन न मिलाकर उसमें एक पहलू, एक महत्वपूर्ण घटना, एक विशेष परिस्थिति अथवा एक उद्दीप्त क्षण का चित्र मिलेगा। उसके लिए एकता एवं एकाग्रता अनिवार्य है - किसी प्रकार का वस्तु विवेद उसे सहय नहीं। एकाग्रता में आकस्मिकता की झकारे अपने आप आ जाती है और इस झकोर से चरमसीमा में स्पन्दन पैदा हो जाता है। विदेश के संकलन-त्रय का निर्वाह भी इस एकाग्रता में काफी सहाय्यक हो सकता है, पर वह सर्वथा अनिवार्य नहीं है। प्रभाव और वस्तु का ऐक्य तो अनिवार्य ही है, लेकीन स्थान और काल की एकता का निर्वाह किए बीना भी सफल एकांकी की रचना हो सकती है और प्राय: होती है।"[२१]

उपर्युक्त विद्वानों के एकांकी के संबंधी विचारों को देखने के उपरान्त हम इस निष्कर्षपर पहुँचते हैं।

१] एकांकी में एक ही घटना, परिस्थिति एवं समस्या होनी चाहिए।

२] एकांकी सुनिश्चित, और एकाग्रता से अपनी लक्ष्य की ओर बढ़ना चाहिए।

३] एकांकी कौतुहल से प्रारंभ होकर चरमसीमा के पश्चात ही समाप्त होनी चाहिए।

४] एकांकी के निर्देशान में मितव्ययता और चातुरी चाहिए।

५] एकांकी में स्थान एवं काल की एकता अनिवार्य नहीं है।

६] अन्तर्द्वंद की प्रधानता होनी चाहिए।

७] एकांकीकीसमाप्ति एक ही बैठक में ही अनिवार्य है।

इसप्रकार हमारे सामने एकांकी की कुछ विशेषताएँ खड़ी होती हैं। परंतु उपरोक्त विशेषताओं में से पाँच क्रमांक की विशेषता कुछ सांशंकता निर्माण करती है। क्योंकि डॉ. रामकुमार वर्मा "संकलनत्रय" नाटक के लिए अनिवार्य मानते हैं।"

उपरोक्त विशेषताओं को डॉ. सत्येंद्र तत्व कहते हैं। फिर भी अन्य कुछ विद्वानों की एकांकी के तत्व संबंधी विचार देखना हम आवश्यक समझते हैं।

डॉ. उपेन्द्रनाथ अश्क ने लिखा है, "एकांकी का पहला तत्व उसका छोटा कॅनवास है। इसके अतिरिक्त एकांकी के लिए दस मिनिट से लेकर तीस-पैंतीस मिनिट की अवधि, रंग-संकेत, कार्यगतिअभिनय, संवाद, वातावरण, चरित्र-चित्रण, तथा प्रकाश के उचित प्रयोग की आवश्यकता है।"[२२]

डॉ. रामचरण महेन्द्र इन्हें तत्व कहते हैं और आगे चलकर एकांकी के आधारभूत मूलतत्व इसप्रकार उपस्थित करते हैं, "मूल विचार, प्रभाव, समस्या या सन्देश कथावस्तु, संघर्ष और प्रभाव ऐक्य।"[२३]

तो डॉ. एस.पी. खन्ना ने एकांकी के तत्वों को इसप्रकार गिनते हैं, "कथानक, वस्तु रंगस्थल, भाव प्राधान्य, सामंजस्य तथा समन्वय, और ध्यानाकर्षन।"[२४]

डॉ. राजेंद्रसिंह गौड ने एकांकी के मुलतत्व बताते हैं, "कथानक, वस्तुनिर्माण, चरित्र-चित्रण, कथोप-कथन, शैली और उद्देश्य।"[२५]

तो रामगोपालसिंह चौहान के अनुसार एकांकी के तीन मूल तत्व है - "कथा, संवाद और दृश्यविधान"[२६]

"एकांकी के तत्व" के नामपर हिन्दी में इतना विवेचन हुआ है कि, उसे ध्यानपूर्वक देखने से एक बात स्पष्ठ हो जाती है कि, विद्वानों ने एकांकी के तत्वों और विशेषताओं को परस्पर उलझा दिया है - कहीं तत्वों को विशेषताओं में गिन लिया है, तो कहीं विशेषताओं को तत्व कह दिया है। अत: हम तो इस निष्कर्षपर पहुँचते हैं कि, संक्षिप्तता, एकाग्रता, मितव्ययता, ऐक्य आदि एकांकी की अपेक्षित विशेषताएँ होनी चाहिए और तत्व तो कथानक, पात्र, संवाद आदि को ही कहना चाहिए।

संस्कृत में नाटक के तीन तत्व माने हैं - वस्तु, नेता और रस और चौथे तत्व के रूपमें अभिनय को स्विकृत किया है। परंतु पाश्चात्य आलोचक एवं विचारवंत इन तत्वों की संख्या छ: मानते हैं। जैसे, कथानक, संवाद, पात्र, देशकाल, शैली और उद्देश्य। परंतु रामगोपालसिंह चौहान इस परम्परागत मत का खण्डन करते हैं और कहते हैं, "नाटक के छ: तत्व जो आज माने जाते है, भ्रामक है। वस्तुत: नाटक के

तीन ही तत्व है १] कथावस्तु, २] संवाद ३] दृश्यविधान। बाकी सब तत्व इन आधारभूत तत्वों के अंतर्गत समाहित हो सकते हैं। नाटक मुलत: दृश्य होता है अर्थात उसका अभिनयात्मक होना आवश्यक है, अत: इतन तीनों तत्वों का आधारभूत गुण अभिनयात्मक होना चाहिए।"[२७]

डॉ. सिध्दनाथकुमार के मतानुसार, "कथानक, पात्र, संवाद, उद्देश्य, देशकाल, भाषाशैली, तथा रंगसंकेत सभी स्वतंत्र तत्व है।"[२८] श्री उमाशंकर एवं श्री जशवंत शेखडीवाल भी इससे सहमत है।

अत: हम भी कथावस्तु, पात्र, संवाद, उद्देश्य, देशकाल, भाषाशैली, रंगनिर्देश को एकांकी तत्व के रूप स्विकार करते हैं। साथ ही संकलनत्रयरूप संघर्ष को भी एकांकी के तत्वों के रूप में स्विकार करना अनिवार्य मानते हैं।

* कथावस्तू *

कथानक या कहानी कथावस्तु का सिधा अर्थ है। फिरभी कथावस्तु के बारे में विद्वानों की परिभाषाएँ देखना उचित होगा। शिप्ले के विश्वसाहित्य कोश में प्लॉट [Plot] शब्द की टिप्पणी में लिखा है, "कथानक घटनाओं का वह संगठन है, भले ही वह सरल हो या जटील, जिसपर कथा या नाटक की रचना होती है।"[२९] बसफिल्ड कहते हैं, "कथानक वह कहानी है जो लेखक के उद्देश्य के अनुरूप क्रमबध्दता एवं विस्तार प्राप्त करती है।"[३०]

ग्रीनवुड कहते हैं, "कथानक, लेखक के लिए वह चारा है, जिसके द्वारा वह अपनी गहराई में डूबकर महत्वपूर्ण विषय की बडी और चमकती हुई मछली पकड़ता है।"[३१]

उपर्युक्त कथावस्तु के परिभाषाएँ एवं विचारों के आधारपर हम यह कह सकते हैं कि, लेखक अपने उद्देश्य के पूर्ति के लिए उचित पात्र-संयोजन के साथ द्वंद्वयुक्त एवं घटनाक्रम को प्रस्तुत करता है जिसे हम कथावस्तु कह सकते हैं। अर्थात हमें कथावस्तु के परिभाषाएँ तो मिल चुकी है परंतु उसके जन्म के संबंध में प्रश्न खड़ा हो जाता है। इस संबंध में डॉ. सिध्दनाथकुमार लिखते हैं, "यह कथानक की रचना और प्रकृतिपर निर्भर है। सामान्यत: कथानक का जन्म कुछ पात्रों की व्यक्तिगत विशेषताओं से होता है। कुछ व्यक्ति जब कुछ विशेषस्थितियों में पडते हैं, तब नाटकीय स्थितियाँ उत्पन्न हो जाती है। कभी कुछ पात्रों के पारम्पारिक संघर्ष से कनाथनक उभर आता है, कभी

एक ही पात्र के अन्तर्जगत में होनेवाले रागात्मक द्वंद्व में भी कथानक का बीज मिल जाता है। कभी किसी विचार या वातावरण में भी कथानक-निर्माण का सुत्र मिल जाता है।"[३२]

कथावस्तु के निर्माण में कुछ ना कुछ निश्चित प्रयोजन होता ही है। जैसे, दर्शकों का मनोरंजन करना, दर्शक के मन को एक निश्चित दिशा की ओर बढना आदि। इस संबंध में, समरसेट के विचार है, "कथानक का जो मुख्य काम है, उसपर बहुत लोग ध्यान नहीं देते। यह काम है, पाठक के रुचि को दिशा निर्देश देना। कथा साहित्य में सबसे मुख्यकाम यही है। क्योंकि, यह रुचि का दिशा निर्देश ही है, जिस के द्वारा लेखक पाठक को एक पृष्ठ से दुसरे पृष्ठ की ओर बढाता है, जिसके द्वारा यह पाठक में मनचाही मनस्थितियों की सृष्टि करता है।"[३३] साथ ही कथानक ही पात्रों के चरित्र में सहाय्यक ठेहरती है।

निष्कर्षत: हम यह कह सकते हैं, कि, कथावस्तु एकांकी का एक महत्वपूर्ण तत्व ही नहीं वह एकांकी का रीढ कहें तो भी अतिशयोक्ति नहीं होगी। क्योंकि कथा-वस्तु एकांकी की आधारशिला है। इसीपर एकांकी का समुचा भवन खड़ा होता है।

कथावस्तु का चयन लेखक अपने अतीत की ओर झांककर कर सकता है या फिर वर्तमान को लेकर। अपनी रुचि के अनुसार वह इतिहास, पुराण लोककथाएँ, प्राचीन परम्परा, धर्म समाज, मानवीय भाव और समस्याएँ, वर्तमान जीवन के विभिन्न पहलुओं आदि कहीं से भी विषय का चयन कर सकता है। वस्तुचयन में लेखकपर किसी भी प्रकार का बंधन नहीं होता। किंतु कथावस्तु में वास्तविकता, रोचकता, विस्मय होना, आवश्यक है। साथ ही कथावस्तु संक्षिप्त, सुगठीत और प्रभावशाली एवं विश्वसणीय होना चाहिए। "जिज्ञासा और कौतुहल"[३४] उसके प्रधान गुण है।

उपर्युक्त गुणों के साथ-साथ कथावस्तु में "प्रभाव ऐक्य और रोचकता" अनिवार्य है। क्योंकि कथानक के द्वारा दर्शकों को आकृष्ठ करना और मनोरंजन होना आवश्यक है।

* पात्र तथा चरित्र-चित्राण *

एकांकी के लिए पात्र तथा चरित्र चित्राण का महत्व स्पष्ठ करते हुए केनेथ मैकगोवान लिखते हैं - "विश्वास रखों कि जितना महत्व कथानक का है, उतनाही

महत्त्व चरित्र-चित्रण का है। कथानक चरित्र का निर्माण नहीं कर सकता, [लेखक को ऐसे लोगों को खोजना या निर्मित करना चाहिए, जो कहानी को सजीव बनाए] लेकीन चरित्र-चित्रण कथानक का निर्माण कर सकता है और करते हैं।"[३५] एकांकी मात्र मनोरंजन न बनकर उत्कृष्ट साहित्य में स्थान प्राप्त कर सके, इसके लिए चरित्र-चित्रण पर विशेष जोर देना अनिवार्य हो जाता है। चरित्र-चित्रण कथानक निर्माण से उच्चत्तर कार्य है।

एकांकी में पात्रों की संख्या जितनी कम हो उतनी एकांकी के लिए लाभदायी है, क्योंकि पात्रों की भरमार प्रभाव ऐक्य के लिए बाधा बनने की संभवना है। ऐसा कोई नियम नहीं है की एकांकी में इतने ही पात्र हो परंतु चार या पाँचसे अधिक पात्रों की संख्या हो तो, एकांकी के प्रस्तुतिकरण में अड़चन निर्माण हो सकती है। डॉ. रामकुमार वर्मा लिखते हैं, " एकांकी नाटकों में पात्र बहुत कम होते हैं। उनकी संख्या चार या पाँच से अधिक नहीं होती। केवल मनोरंजनार्थ पात्रों की संख्या में वृध्दि अपेक्षित ही नहीं, वरना कला की दृष्टि से नाटक के लिए हानिकर भी हैं।"[३६]

एकांकी में नायक के साथ प्रतिनायक की कल्पना भी सम्मिलीत है। प्रतिनायक की कल्पना उस एकांकी में की जाती है जहाँ बाह्यसंघर्ष की प्रधानता होती है, और एकांकी का विषय प्रेम हो। जिन एकांकीयों में प्रतिनायक की व्यवस्था नहीं होती, वहाँ विभिन्न गौण पात्रों के समावेश से घटनाक्रम में गति उत्पन्न की जाती है। गौण पात्र में जो कथा के विकास को उत्तेजित करते हैं। उन्हे उत्तेजक पात्र कहते हैं। जो गौण पात्र मुख्य पात्र या नायक के मनोभावों को प्रकट करते है उन्हे माध्यम महते हैं। माध्यम पात्र सामान्यत: नायक का कोई मित्र या आलिय व्यक्ति होता है। वह नायक को स्वगत कथन का सहारा लेना न पड़े इसमें सहयोग देता है। एकांकी के कथावस्तु के रहस्यों एवं अप्रत्यक्ष विषय को स्पष्ट कर देनेवाले पात्र को सुचक कहा जाता है। इत सभी गौण पात्रो को "व्यंजक"[३७] कहा जाता है जो रहस्यात्मक संकेत, इंगित अथवा भूमिका के भाँति उपस्थित होते हैं और नाटक के प्रभाव को कायम रखने का काम करते हैं।

एकांकी के मुख्यपात्र का चरित्र तो स्वयं अपने आप में महत्वपूर्ण है। मुख्यपात्र का रंगमंचपर का प्रवेश आकर्षक क्षणों में ही होना चाहिए। जिससे नायक की ओर

सब का लक्ष्य केंद्रीत हो सके। एकांकी नाटक के लिए तो यह बात बहुत महत्वपूर्ण है। क्योंकि ग्रीनवुड का विचार हैं, "नाटक चूँकी रंगमंचपर प्रदर्शन के लिए होता है, उसमें कार्यशील चरित्र का अंकन होना चाहिए, किन्तु एकांकी में चरित्र की गतिशिलता एवं कार्यशिलता का विशेष स्थान नहीं रहता।"[३७]

एकांकी नाटक के पात्रों की विशेषताएँ हम निम्न प्रकार से प्रस्तुत करते हैं,

१] एकांकी में प्रस्तुत पात्र विश्वसणीय हो। अर्थात पात्र ऐसे हो जिसपर सहज ही विश्वास किया जा सके। लेकिन यह तभी संभव है जब पात्र का कार्य और जीवन स्वाभाविक होता है। प्रत्येक कार्य का कोई न कोई कारण होता है, जैसे भागवत और प्रवृत्तिगत। ब्रैन्डर मॅथ्यूज कहते हैं कि, "पात्र के बिना किसी कारण के कार्य करना अक्षम्य अपराध है।"[३८] साथ ही पात्र की स्वाभाविकता के लिए उसका अंकण मनोवैज्ञानिकता के आधारपर होना आवश्यक है जिससे पात्र निश्चित ही विश्वसणीयता निर्माण करने में सफल होते हैं।

२] पात्र का सदैव रंगमंचपर होना अनिवार्य है, क्योंकि उसके न रहने से एकांकी में कुछ क्षीणता आ जाने की संभावना हैं।

३] पात्र में एक दुसरे पर घात-प्रतिघात करने की क्षमता होनी चाहिए, क्योंकि जिससे संघर्ष की तिव्रता निर्माण होकर आकर्षक शक्ति आती है।

४] पात्रों में परिवर्तन की क्षमता हो। इसका अर्थ पात्र अपनी स्वाभाविकता छोड़कर परिवर्तीत हो ऐसा नहीं तो पात्र में परिवर्तीत गुण मौजुद होते हैं, परंतु वे उभरकर नहीं आते हैं। किसी घटना के टकराहट से वे उभर आते हैं। ऐसा होने से पात्र की चरित्रता में आकर्षण बढ जाता है। परंतु यह परिवर्तन पूर्वसंकेतों के अनुरूप होना चाहिए।

पात्र का चरित्र-चित्रण करते समय नाटककार स्वयं उसके चारित्रिक बातों उद्घाटीत नहीं कर सकता। तो नाटककार एकांकी में स्थित पात्रों के सहारे, संवाद के रूप में पात्रों के चरित्र की विशेषताओं का उद्घाटन करना पड़ता है। साथ-साथ चरित्र का उद्घाटन करते समय उसके कार्यव्यापार का विचार करना पड़ता है। क्योंकि विशेष परिस्थिति में पात्र पडनेपर उसकी प्रतिक्रियापर उसका चरित्रण निर्भर होता है।

पात्रों के कुशल चरित्रांकण के लिए मानव-प्रवृत्ति और मनोवैज्ञानिकता का सुक्ष्म अध्ययन अपेक्षित है। इस संबंध में एस. पी. खत्री लिखते हैं : "जितना ही लेखक का निरिक्षण तीव्र होगा, जितनी ही उसकी आँख मजी हुई होगी, जितना ही उसका अनुभव व्यापक होगा, उतना ही चरित्र-चित्रण प्रभावपूर्ण तथा संतोषदायी होगा।"[३९]

* संवाद *

एकांकी के लिए संवाद या कथोपकथन अनिवार्य है। इसके अभाव में एकांकी का भवन खड़ा ही नहीं हो सकता। इसी महत्व के कारण ही अनेक विद्वान इसे एकांकी का "सर्वस्व", "एकांकी की आत्मा", "एकांकी का प्राण, आदि कहते हैं। परंतु सिध्दनाथकुमार इसे एकांकी का तत्व मात्र मानते हैं। वे कहते हैं, "संवाद एकांकी का तत्वमात्र है, अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम मात्र है, वह आत्मा या प्राण नहीं है।[४०] लेकिन संवाद प्राण हो या न हो परंतु संवाद के बिना एकांकी का सजीव प्रकटीकरण असंभव है। यह हमें मानना ही पड़ेगा।

एकांकी में संवाद अनिवार्य है। अर्थात संवाद के पिछे निश्चित कोई न कोई प्रयोजन छिपा होता है। अत: हमें इसे देखना होगा। डॉ. रामकुमार वर्मा लिखते हैं, "एकांकी का संवाद चरित्र की चरित्रातिकता को प्रकट करता है, एकांकी के कथासूक्ष को विकसित करता है, और पात्रों के भावों को प्रकट करता है।"[४१] तो राजेंद्रसिंह गौड लिखते हैं, "संवाद के तीन प्रयोजन है, - वस्तु की प्रगति, चरित्र के विकास और भावों के स्पष्टीकरण एवं उनको गंभीर बनाने में सहाय्यक होना।

उपर्युक्त विद्वानों ने बताए हुए संवाद के प्रयोजन अपने स्थ में सही है। परंतु और कहीं

आमतौर पर कार्य का अर्थ समझा जाता है शारीरिक कार्य। अंग संचालन कार्य माना जाता है, पर वाणी संचालन कार्य नहीं माना जाता। लेकिन नाटक में ऐसी बात नहीं है। एलन थार्मसन कहते हैं, "लोग भूल जाते हैं की नाटकीय कार्यव्यापार का मुख्य स्थ वाणी है।"[४२] जो वस्तु नाटक को एक स्थिति से दुसरी स्थिति तक ले जाने की क्षमता रखती है उसे हम कार्यव्यापार कह सकते हैं। इसप्रकार नाटक का संवाद भी कार्य व्यवहार है वह नाटक के घटनाक्रम को आगे बढाता है, उसे विकासीत करता है।

...

संवाद पात्रों की अभिव्यक्ति का माध्यम है। इससे पात्रों की अपनी भावाभिव्यक्ति होती है। जिससे उनके अपने चरित्र पर भी प्रकाश पड़ता है और दुसरे पात्रों के चरित्रपर भी। क्राथर कहते हैं, "महान संलाप पात्रो को उसीप्रकार प्रकाशीत कर देता है, जिसप्रकार बिजली अपनी चमक से अन्धकारमयी धरती को।"[४३]

अपेक्षित वातावरण एवं प्रभाव की सृष्टि के लिए भी एकांकी के संवाद सहाय्यक सिध्द होते हैं। प्राचीन रंगमंचीय नाटक तथा आधुनिक रेडियो-नाटकों में ऐसे अनेक उदाहरण मिलेंगे, जिसमें संवाद के द्वारा वातावरण का निर्माण किया जाता है। साथ ही नाट्य-प्रदर्शन की शिल्पगत समस्या सुलझाने में भी सहाय्यक सिध्द हुई है।

एकांकी में संवाद का एक उपयोग यह भी है कि, इससे नाटक की गति नियंत्रित की जा सकती है। क्योंकि जब-जब नाटक के संवाद लम्बे-लम्बे और वादविवादत्मक बन जाते हैं तब एकांकी या नाटक की गती मंद पड जाती है। और जब नाटक में संवाद संक्षिप्त और छोटे-छोटे होते हैं तब नाटक में गति आती है। और गतिशिलता एकांकी एवं नाटक का अनिवार्य गुण है।

संस्कृत नाट्य नियमों के अनुसार संवाद के तीन प्रकार है। सबके सुनने योग्य, कुछ लोगों के सुनने योग्य, और किसीके न सुनने योग्य। इसमें पहला जो प्रकार है और इसी प्रकार के संवाद का नाटककार मुख्यत: आधार लेता है। इसमें जो तिसरा प्रकार है, इसका भी अनेक नाटककारोने उपयोग किया है। क्योंकि पात्रों के अनार्जगत से अकात होने के लिए इसका उपयोग किया जाता है। जिसेही हम स्वगत-कथन या आत्मकथन कहते हैं। परंतु आजकल इस प्रकार के संवाद लेखन को "अस्वाभाविकता" कहकर टाल रहे हैं। और उस जगह मुख्यपात्र के साथ किसी विश्वासपूर्ण का निर्माण करके " स्वगत " की जगह "प्रत्यक्ष-कथन" के संवाद लिखना स्वाभाविक माना जा रहा है

एकांकी में संवाद के महत्त्व, प्रयोजन, संवाद के प्रकार आदि देखने के बाद संवाद की अपेक्षित विशेषताएँ देखना हम आवश्यक मानते हैं।

१] एकांकी के संवाद प्रयोजनमूलक और आकर्षक हो। - बिना प्रयोजन के आए हुए संवादसे दर्शक बारे हो जाते हैं। संवादमें प्रयोजन के साथ ही उसमें आकर्षकता चाहिए। क्योंकि "सुन्दर और आकर्षक कथोपकथन एकांकी के समस्त अभावों को दूर कर देता है।"[४४]

२] संवाद की दूसरी विशेषता उसकी स्वाभाविकता है। - अर्थात संवाद सुनकर या पढ़कर यह अनुभव होना चाहिए कि जो पात्र संवाद बोल रहा है वह उसके चरित्र के अनुरूप बोल रहा है। या उसका कहना उसके स्वभाव के अनुसार है।

३] संवाद की तिसरी महत्वपूर्ण विशेषता है, संक्षिप्त और चुस्त संलाप। - छोटे-छोटे संवाद से एकांकी में गति और शक्ति आती है। परंतु संक्षिप्त संवाद तभी महत्व प्राप्त करते हैं, जब संवाद अपने आप में महत्वपूर्ण होते हैं, उनमें किसी भी प्रकार का निरर्थक शब्द नहीं आता है। इस संबंध में एटन कहते है, "तुम्हारे पास बहुत कम शब्द है जिससे तुम्हे बहुत बडा प्रभाव उत्पन्न करना है क्योंकि रंग-मंचपर प्रभाव बडा होना चाहिए। अत: प्रत्येक शब्द को सार्थक होना चाहिए।"[४५]

* देशकाल तथा वातावरण *

देश काल से उस स्थान और समय का अर्थ ग्रहण किया जाता है, जिसके आधारपर नाटक का कथानक निर्मित होता है। कोई घटना किसी विशेष स्थानपर ही, और किसी विशेष समय में ही घटती है, शून्य में उनका जन्म नहीं होता। नाटक ही नहीं -सभी साहित्य रूपों की यह अनिवार्य विशेषता होती है कि वह अपने देशकाल को सचेत रूपमें चित्रित करें। ऐरिक बेन्टली कहते हैं - "हम जानते हैं कि महान कला सार्वभौम होती है, पर सार्वभौम होने के पहले वह पूर्णत: स्थानीय रहती है उसपर कुछ विशेष लगों तथा उनकी जीवन-प्रणाली का हस्ताक्षर होना चाहिए।"[४६]

एकांकी में एकांकी के अन्य तत्वों के साथ देशकाल तथा वातावरण पर ध्यान आकर्षित करना आवश्यक है। एकांकी में जिस समाज की कहानी ली जाती है, उन लोगों के रहन-सहन का, उनकी जीवन पध्दती का, यथार्थ चित्र उसमें अंकीत करना चाहिए। ऐतिहासिक एकांकी हो, तो इस बातपर तो विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है। इस संबंध में हडसन लिखते हैं, -"ऐतिहासिक साहित्य के रचनाकार को एक साथ ही इतिहास और कला दोनों के दायित्व का निर्वाह करना पडता है।"[४७] और ऐसा करने से ही साहित्य में वास्तविकता आती है। केवल कथानक के वास्तविकता के लिए नहीं, पात्रों की यथार्थता एवं वास्तविकता के लिए भी देशकाल की आवश्यकता होती है।

एकांकी का देशकाल यह तत्व एकांकी के किसी विशेष अंग में या किसी विशेष स्थान पर नहीं होता, वह प्रारंभ से लेकर अंत तक सर्वत्र व्याप्त रहता है। नाटक के दृश्य विधानमें पात्रों की वेशभूषा, रहन-सहन, व्यवहार, संवादशैली, आदि सभी बातो में इसे देखा जा सकता है। इसके उचित नियोजन के लिए उस वातावरण एवं परिस्थितियों और सांस्कृतिक प्रणालियों से गहन परिचय निर्माण आवश्यक होता है।

* भाषा शैली *

भाषा ही साहित्य के अभिव्यक्ति का मध्यम है। एकांकी नाटक में भी भाषा ही अभिव्यक्ति का मुख्य माध्यम है। मुख्य माध्यम इसलिए कहा जा रहा है कि, इसमें भाषा के अतिरिक्त अभिव्यक्ति के अन्य माध्यम भी है। पात्रों की वेशभूषा, पात्रों की शान्त प्रतिक्रिया [मुकाभिनय] से भी भावाभिव्यक्ति होति हैं। पर फिर भी भाषाही एकांकी का सबसे प्रधान माध्मय है। मुकनाटकों में केवल भाव-भंगिमाओं काम लिया जाता है। लेकिन "स्थान, कार्य और भाव भंगिमा के द्वारा कहानी कहना नाटक के प्रारंभ की दिशा में एक चरण मात्र है। जब कहानी शब्दों द्वारा कही जाने लगती है, तभी नाटक का जन्म होता है।"[४८]

साहित्य के अन्य विधाओं की भाषा और एकांकी की भाषा इनमें अंतर होता है। एकांकी प्रत्यक्ष प्रदर्शन का साहित्य है। उपभोक्ताओं से इसका प्रत्यक्ष संबंध रहता है। परिणामस्वरूप इनमे प्रत्यक्ष प्रेक्षणीयता की शक्ति अपेक्षित है। इसकी भाषा ऐसी होनी चाहिए की, वह भावों, विचारों को दर्शकों - श्रोताओं तक बीना किसी कठिनाई से प्रत्यक्षरूप में पहुँचा सके। क्योंकि, दर्शकों, श्रोताओं के पास रुककर सोचने का अवकाश नहीं होता। पाठ्य साहित्य में उपलब्ध सुविधाएँ नहीं रहती। पृष्ठो को फिरसे उलटकर नहीं देखा जा सकता। शब्दकोष का उपयोग नहीं किया जा सकता। स्पष्ठ है कि, एकांकी की भाषा सहज और बोधगम्य होनी चाहिए। प्रसिध्द आयरिश नाटककार कहते है, "उन्होंने अपने नाटकों में ऐसे कुछ ही शब्दों का व्यवहार किया है, जिन्हे उन्होंने अपने आयरलंड के सामान्य लोगों से न सुना हो।"[४९] लेकिन इसके साथ ही उन्होने भाषा की काव्यात्मक शक्तिपर भी जोर दिया है। वे कहते हैं, "नाटक की भाषा काव्यात्मक भी होनी चाहिए, जिन देशों के लोगों की कल्पना, भाषा समृध्द और सजीव होती है, वहाँ के लेखकों के लिए अपने शब्दों को समृध्द

बनाना अधिक संभव होता है।"[40] यथार्थवादी नाटककार भी इस मत से सहमत है। भाषा सामान्य जीवन के निकट रहते हुए भी शक्तिसंपन्न, सजीव, प्राणवंत और भावव्यंजक रहे, यही भाषा कीप्रमुख विशेषता है।

भाषा केवल भावाभिव्यक्ति का ही माध्यम नहीं, पात्रों के चरित्र-चित्राण का साधान भी है। प्रत्येक व्यक्ति की अपनी भाषा होती है। उसपर उसकी शिक्षा-दिक्षा, उसके संस्कार उसके परिवेश आदि का प्रभाव रहता है। प्रत्येक व्यक्ति कुछ विशेष प्रकार के शब्दों का व्यवहार करता है, तात्पर्य यह कि, एकांकी में पात्र की भाषा में उसकी वैयक्तिकता परिलक्षित होनी चाहिए। यदि एकांकी शुरू से लेकर अंत तक एक ही भाषाशैली हो, तो वह प्रशंसणीय नहीं कहा जा सकता। एकांकी में नाटककार को अपने वैयक्तिकता का मोह छोड देना पड़ता है।

एकांकी में भाषा का रूप नाटयप्रकार के अनुसार बदलना पड़ता है। क्योंकि गंभीर नाटक की भाषा, प्रहसनों में नहीं चल सकती और भावात्मक नाटकों एवं एकांकियों की भाषा समस्या प्रधान तथा बौध्दीक नाटकों में नहीं चल सकती। सफल नाटककार भाषाशैली के उचित प्रयोग के लिए बहुत सतर्क रहता है।

* उद्देश्य *

भारतीय परम्परानुसार हमारी सभी कृतियाँ सोद्देश्य होती थी। धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष जीवन के चार प्रत्यक्ष उद्देश्य माने गए है। चारों से किसी एक की प्राप्ति रचना का उद्देश्य बन जाता है। साहित्य में भी जीवन मिमांसा तथा विचार-सामग्री के रूप में उद्देश्य रहता है। वह प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष हो सकता है। अर्थात साहित्य भी सामाजिक उत्तरदायित्व-निर्वाह का साधन भी है। जिसमें लेखक अपना जीवन दर्शन साहित्य के माध्यम से प्रस्तुत करता है। एकांकी लेखक भी यह कर सकता है, परंतु एकांकीकार के लिए मर्यादा आ जाती है। वह स्वयं साहित्य में नही आ सकता उसे एकांकी में प्रस्तुत पात्रों का सहाय्य लेना पडता है। पात्रों के माध्यमसे वह अपने विचारों को प्रस्तुत कर सकता है, परंतु उसे यह भी ध्यान रखना पडता है कि पात्रों की व्यक्तित्व की भी रक्षा हो। कभी-कभी अनेक नाटककार अपना तादात्म प्रस्तुत पात्राविशेष से भी करते हैं और अपना विचार प्रकट करते हैं।

एकांकी में प्रस्तुत पात्रों के द्वारा अपने विचारों की अभिव्यक्ति करना अनेक नाटककारों का उद्देश्य रहता है, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि वह दर्शकों, सामाजिकों को कुछ उपदेश दे, अथवा किसी तत्व को प्रमाणित करने का प्रयत्न करें। सिङ्ग कहते हैं - "वादय संगीत की तरह ही नाटक भी न कुछ सिखाता है, न कुछ सिध्द करता है।"[५१] यदि नाटककार का कथ्य ध्वनित होकर सामने आए तो विशेषता मानी जा सकती है। अन्य नाटकों की तरह एकांकी का भी मुख्य उद्देश्य रससृष्टि है, आनंद दोन करना होता है। परंतु वास्टर प्रिचर्ड एअन कहते हैं, "वह कुछ क्षण के लिए भले ही मनोरंजक लगे पर उसमें जीवन का परिवेश या आच्छादन नहीं होता।"[५२] अर्थात वे कला जीवन के लिए इस विचार को सामने लाते हैं।

अत: हम यह कहते है कि, एकांकी का उद्देश्य मनोरंजन करना है ही साथ ही साथ अपनी संक्षिप्तता में समग्रता को व्यंजित करना भी एकांकी का उद्देश्य बनता है।

* रंग संकेत *

निदेशन कार्य की सुगमता के लिए रंगनिर्देश देना एकांकीकार के लिए उचित है। एकांकी के लिए रंग संकेत एक ऐसा तत्व है, "जो सर्वथा निष्क्रय कथानक को क्रियाशील बनाता है तथा अन्य निरुद्देश्य वाक्यों को अर्थपूर्ण संवाद का पद प्रदान करता है, यही वह सर्वशक्ति संपन्न राजदण्ड है, जिसमें नाटककार, पात्र, अभिनय, प्रकाश, संगीत, पार्श्व-वक्ता, तथा परिच्छेदादि अन्यान्य तत्वोंका नियमन नियंत्राण करता है।"[५३] अत: यह स्पष्ठ हो जाता है कि रंगमंच संयोजन, पात्र के अभिनय,और भाव स्पष्टीकरण के लिए रंग संकेत का महत्व अनिवार्य है। रामकुमार वर्मा इसी विचार को पुष्टि करते हैं, - "नाटकीय संकेतों का जन्म और विकास हुआ है, अभिनेयताओं और दिग्दर्शकों की सुविधा एवं सरलता के हेतु। यह संकेत मंचपर नाटककार के उद्देश्य को भली भाँति -हृदयगम करने में सहाय्यक होते हैं।"[५४]

रंग संकेतपर विस्तार से विचार करते हुए डॉ. रामकुमार वर्मा रंग संकेत के उद्देश्य को निम्नप्रकार से स्पष्ठ करते हैं,[५५]

१] इनकी रचना रंगभूमि की व्यवस्था के लिए होती है। इनसे समय, वातावरण स्थान आदि का स्पष्ठ परिचय मिलता है। कुल एकांकीकार अपने विचारों को अधिक स्पष्ठ करने के लिए मंच का मानचित्रा भी देते हैं।

२] नाटकीय संकेता का लक्ष्य अभिनय में सहाय्यता पहुँचाना है। नाटककार पात्रों के हावभाव, वेशभूषा, उठने-बैठने-चलने की रिति, उनकी भावभंगिता आदि का उल्लेख कर देता है। इनमें नाटककार की मनोवैज्ञानिकता और मानवीय भावों को परखाने का ज्ञान भी प्रकट होता है।

३] नाटकीय संकेतों की रचना पात्रों की रूप कल्पना में भी सहाय्यता पहुँचाने के लिए होती है।

४] नाटकीय संकेतों का चतुर्थ उद्देश्य है, कथावस्तु के दुरूह एवं विस्तृत स्थलों को स्पष्ठ एवं संक्षिप्त रूपमें चित्रित करना। जिन दृश्यो एवं घटनाओं के वर्णन में अधिक स्थानऔर लंबे-लंबे कथोप-कथन की अनिवार्यता हो जाती है, उन्ही को नाटककार नाटकीय संकोतो के रूपमें उपस्थित करके उनकी प्रेक्षणीयता बढ़ा देता है।

५] नाटकीय संकेतो का पाँचवा लक्ष्य है, कथावस्तु के उन तत्वों का चित्रित करना जिनकी अभिव्यक्ति न तो कथोप-कथन द्वारा हो सकती है,और न किसी अन्य नाटकीय प्रयत्न से हो सकती है।

रंग संकेत तो आजकल प्रत्येक एकांकी में दिखाई देता है क्योंकि आजकल वह एकांकी का अनिवार्य तत्व माना जा चुका है। परंतु लंबे-लंबे रंगसंकेत छोटे-छोटे बातों के लिए देना एकांकीकार की असफलता का दयोतक है। अनेक एकांकीकार रंग संकेत को साधन बनाकर कभी-कभी प्रत्यक्षरूप में एकांकी में प्रवेश करते हैं, जो अनुचित है। जब तक अभिनय का सवाल है, चाहे वह अभिनय वाचिक हो, या अंगिक। रंग संकेत बहुत सहयोग नहीं देते। और यदि पात्र रंग-संकेतो को आधार मानकर अभिनय करेंगा तो वह अभिनय वास्तविक या जिवंत न होकर लेखक के हाथ का कटपुतली और प्रभावशून्य बन जायेगा।

* एकांकीयों के प्रकार *

एकांकीयों का वर्गीकरण हिन्दी के विद्वानों ने अपनी-अपनी दृष्टिसे अलग-अलग प्रकार से किया है। अत: उन विद्वानों के विचारों एवं अनेक द्वारा किए गए प्रकारओं को देखेंगे।

प्रो. अमरनाथ गुप्त के अनुसार एकांकीयों का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया है।[16]

.. -

१] समस्यात्मक एकांकी :

लेखक इसका निर्माण किसी समस्या को लेकर करता है। इसका दुसरा नाम समस्या नाटक भी है। "बिशाप्स कॅंडिलस्टिक" इसीप्रकार की एक सफल रचना है।

२] फैंटसी :

खुले स्थानपर खेले जानेवाली एकांकी। हेराल्ड ब्रिग हाऊस का "हाऊ दि वैदर इज मेड" ऐसा ही नाटक है।

३] प्रहसन :

इसमें लेखक का उद्देश्य स्वयं हँसना और दुसरों को हँसाना होता है उद: जान ब्रेडन का "शोटी एकोर सेड"।

४] विद्रुप एकांकी :

इसमें लेखक का ध्येय किसी घटना, किसी देश के रितिरिवाज आदिपर कटाक्ष करना होता है। उद: लॉर्ड डन्सेनी के एकांकी नाटका जिनमें अन्धविश्वास पर कटाक्ष है।

५] गंभीर एकांकी :

ऐसे एकांकी जिन्हे हम "सिरिअस" कह सकते हैं और जो किसी साहित्य की उत्तम से उत्तम बड़ी रचना का मुकाबला कर सकते हैं। उद: मारिस मेटरलिक का "इँट्रयुडर"।

६] मेलोड्रॅमिटिक एकांकी :

किसी के दु:ख में दु:खी होने के बदले जब हम हँसते हैं, तब घटना मेलोड्रॅमिटिक हो जाती है। इसके ठिक विपरित पॅथास है।

७] वैषम्य एकांकी :

ऐसे एकांकी जिनका अंत आनंदमय है, परंतु जिनका विषय विपन्नता से आरंभ होता है। उद: गर्टल्ड जैनिग्स लिखित "बिखीन दि सेब ॲण्ड दि सेवाय।

८] ऐतिहासिक एकांकी :

इनके विषय का संबंध इतिहास से है। उद: जान ड्रिकवाटर लिखित

"एक्स इक्वल टु जीरो"।

९] व्यंग्यात्मक एकांकी :

इसमें एक दर्दभरा व्यंग्य होता है। उद: स्टेनली हाटन द्वारा लिखा "दि मास्टर्स अब दि हाऊस"।

१०] हारलि किनेड एकांकी :

इसप्रकार के एकांकी का इतिहास विचित्र है। बहुत समय पहले इनका प्रचार था। मुख्य-मुख्य घटना केवल लिखि जाती थी। और पात्र अभिनीत होते समय कथोप-कथन द्वारा उनको सुसंबंध रूप देते थे। इसके पात्र एकही प्रकार की वेशभूषा में हमारे सामने आते थे। हमारे गाँव में आज भी होनेवाले स्वांग आदि की तरह यह रचनाएँ भी। इन्हे कुछ समालोचक "फॅन्टसी" भी कहते है। ओल फैट डाऊन का एकांकी "दि मैटर आव ड्रिम्स" इसी प्रकार का है।

११] काकनी एकांकी :

मजबुरों के विकृत भाषा में लिखि गए एकांकी को "काकनी" कहा जाता है। व्याकरण के निथमों से इसकी भाषा प्राय: मुक्त रहती है। हेराल्ड पपलिन का "दि डम्ब एण्ड दि क्लाइड" इसी श्रेणी का है।

१२] सामाजिक एकांकी नाटक :

इसप्रकार की एकांकी समाज के किसी पार्श्व को लेकर लिख जाते हैं।

एकांकी के उपरोक्त वर्गीकरण के संबंध में डॉ. रामकुमार वर्मा लिखो हैं, "उन्होने पाश्चात्य प्रणाली के आधारपर ही हिन्दी एकांकी का वर्गीकरण किया है। वस्तुत: यह उनका मौलीक प्रयास नहीं है।"[५७] हम भी इस विचार से सहमत है। क्योंकि प्रो. अमरनाथ गुप्त किसी भी जगह खाद हिन्दी एकांकी का नाम नहीं दिया है। साथ ही यह वर्गीकरण वैज्ञानिक नहीं है। सभी प्रकारों में वर्गीकरण का आधार एकही नहीं दिखाई पड़ता। सामाजिक एकांकी, ऐतिहासिक एकांकी का आधार विषय है, प्रहसन और व्यंग्यात्मक एकांकीयों का आधार उनकी मुल प्रेरक चेतना और उनसे उत्पन्न प्रभाव है। काकनी का आधार भाषा है।

डॉ. नगेंद्र के द्वारा किए गए एकांकीयों का वर्गीकरण निम्न प्रकार से है।[५८]

१] सुनिश्चित टेकनीकवाला एकांकी :

इसमें संकलनत्रय हो तो यह एकांकी श्रेष्ठ है, नहीं तो प्रभाव और वस्तु का ऐक्य अनिवार्य होना चाहिए। स्थान और काल की एकता का निर्वाह भले न हो।

२] संवाद या संभाषण :

युरोप के साक्रेटिज के संवाद। हिन्दी के पं. हरिशंकर शर्मा का "चिड़ियाघर" के हास्य-व्यंग्यमय संवाद इसके उदाहरण है।

३] मोनोड्रामा :

मोनोड्रामा स्वगत का ही परिवर्तित रूप है। उद: सेठ गोविंदास का "चतुष्पथ"।

४] फ़िचर :

यह अत्यंत आधुनिक रेडियो का अविष्कार है। इसका स्वरूप प्राय: सुचनात्मक होता है। इसमें किसी विषय विशेषपर प्रकाश डालने के लिए उससे संबंध बातों का नाट्य-सा किया जाता है। उद: प्रेमचंद की दुनिया।

५] फैन्टसी :

यह एकांकी का अत्यंत रोमान्टिक रूप है। इसके लिए यह अनिवार्य है कि लेखक का दृष्टिकोण एकान्त वस्तुगत और स्वच्छन्द हो। इनमें कल्पना का मुक्त विहार होना चाहिए। किसी प्रकार का मनोगत विधान इसे सहय नहीं। उद: डॉ. रामकुमार वर्मा का "बादल की मृत्यु"।

६] झाँकी :

इसे एकांकी का शुध्द रूप समझना चाहिए। इसमें केवल एक दृश्य होता है। अत: स्थान और समय के ऐक्य का पूरा-पूरा निर्वाह हो जाता है।

७] रेडियो प्ले :

इसका एकांकी से कोई मौलीक भेद नहीं है।

डॉ. नगेंद्र के वर्गीकरण डॉ. सत्येंद्र के अनुसार, "यह प्रकार विभाजन बहुत

कुछ वैज्ञानिक ढंग पर है।[५९] "तथापि ध्यान देने पर स्पष्टत: ज्ञात होगी कि जब रेडियो माध्यम की दृष्टिसे एकांकी के दो प्रकार "फ़ीचर और रेडिओ-प्ले" कह दिए गए है। तब रेडिओ नाटक के अन्य प्रकार को भी इसमें आना चाहिए था। स्थान और समय के निर्वाहवाले नाटक को झाँकी कहकर एकांकी का शुध्दरूप माना गया है, और इस ऐक्य निर्वाह न करनेवाले नाटक को "सुनिश्चित टेकनीकवाला" एकांकी कहा गया है। यह विभाजन और नामकरण बहुत स्पष्ट और तर्कसंगत नहीं लगता। संवाद या संभाषण मात्र एकांकी नहीं है, पर इसे भी डॉ. नगेन्द्र ने एकांकी माना है। अत: स्पष्ठ है कि, यह वर्गीकरण भी बहुत वैज्ञानिक और संतोषजनक नहीं है"[६०]

"डॉ. सत्येन्द्र ने एकांकी नाटकों का वर्गीकरण पाँच आधारोंपर किया है।"[६१]

[१] प्रकार के आधारपर।
[२] मूलवृत्ति के आधारपर।
[३] विषय के आधारपर।
[४] वाद के आधारपर।
[५] शैली के आधारपर।

प्रकार के आधारपर वर्गीकरण करने से पहले डॉ. नगेन्द्र के वर्गीकरण के प्रसंग में डॉ. सत्येन्द्र कहते हैं, "इनके अतिरिक्त कुछ और भी हिन्दी एकांकी अपने प्रकार है जिनका उल्लेख होना चाहिए, ये प्रकार भले ही अभी अच्छी प्रकार ग्राहय नहीं हुए हो।"[६२]

१. मालावत एकांकी :

एक उद्देश्य की ओर ले जानेवाले, पर एक दूसरे से कथासूत्र में असंबंध विविध दृश्य किसी एक सुत्र द्वारा संयुक्तकर एकांकी बना डाले गए हो। उदाहरण के लिए पहाड़ी लिखित "युग युग द्वारा शक्ति की पूजा" को देखा जा सकता है। इसमें एकांकीकार ने प्राचीन काल से अब तक के विविध युगों की विविध शक्तियों और उनकी पूजा का निदर्शन कराया है। अजेय शक्ति, वक्षा देवता, मदन देवता, भगवान, शक्ति, महाराज, विद्युत, डॉक्टर, आदि के दृश्य एक नेरेटर [व्याख्याता] की व्याख्याओं द्वारा एक में जोड दिये गये हैं।

२. गौण प्रधान एकांकी :

वे एकांकी जिनमें मूल कथानक के प्रधान पात्रों के अतिरिक्त एक गौण पात्र को उन प्रधान पात्रों की अपनी कथा को प्रकट करते या सुलझाने का केन्द्र मान लिया गया हो। गौण प्रधान एकांकी इसका नाम दिया जा सकता है। जैसे प्रो. आनंद का "डॉ. जीवन" है, डॉ. रामकुमार वर्मा का "उत्सर्ग" इसप्रकार के नाटकों में श्रेष्ठ बन पड़ा है।

३. अलौकिक एकांकी :

यह फैंटसी कल्पनालोकीय एकांकी नहीं कहे जा सकते। यद्यपि इनके पात्र इस भूमि के नहीं होते, तथापि वे सांसारिक समस्याओं पर विचार करते है। जयनाथ नलिन का "परमात्मा का पश्चाताप" इसी कोटी में आयेगा। डॉ. रामकुमार वर्मा का "अन्धकार" भी इसी स्वभाव का है।

४. एकांकी संक्षिप्ति :

किसी बड़े या प्राचीन नाटक को एकांकी में परिणत कर देना, यह एक अलग प्रकार का कौशल है, साधारण एकांकी के अन्तर्गत नहीं आ सकता। अपनी स्वभाव-भिन्नता के कारण यह एक अलग प्रकार माने जाने का अधिकारी है। "सरस्वती" [अक्तूबर १९४३] में प्रकाशित "उत्तररामचरित" इसी प्रकार की एकांकी है।

५. उपसर्गीय एकांकी :

सेठ गोविन्ददास के उपक्रम और उपसंहारवाले एकांकी भी स्वरंग में भिन्नता रखने के कारण एक अलग प्रकार बनाते हैं। उन्हें उपसर्गीय एकांकी कहा जा सकता है।

* मूलवृत्ति के आधारपर डॉ. सत्येन्द्र का वर्गीकरण इसप्रकार है -

१. आलोचक एकांकी २. समस्या एकांकी ३. अनुभूतिमय एकांकी ४. व्याख्या मूलक एकांकी ५. आदर्शमूलक एकांकी और ६. प्रगतिवादी एकांकी।

* विषय के आधारपर डॉ. सत्येन्द्र ने जो पाँच प्रकार किए है वे निम्नप्रकार से है।

...२८/-

१. सामाजिक २. ऐतिहासिक ३. राजनीतिक ४. चारित्रिक तथा
५. तथ्य प्रदर्शक।

* वाद के आधारपर डॉ. सत्येन्द्र ने किए एकांकी के भेद।

१. आदर्शवादी २. यथार्थवादी ३. प्रगतिवादी ४. कलावादी
५. अभिव्यंजनावादी ६. प्रभाववादी।

* शैली के आधारपर उनका वर्गीकरण इसप्रकार है।

१. सीधी-सीधी शैली के नाटक में जितना कहना अपेक्षित है, उतना ही प्रकट किया जाता है। शब्द और अर्थ बहुत सरल और सुबोध होते है।

२. व्यंग्यात्मक एकांकी वे है "जिनमें जो कहा गया है, उससे विशेष ध्वनित हो, जिनमें व्यंग्य, कटाक्ष और वाग्वैदग्ध हो। उद: भुवनेश्वर का "स्ट्राइक"।

३. हास्यपूर्ण एकांकी को प्रहसन कहते हैं। इसकी रचना का लक्ष्य पाठक एवं दर्शक को हसाना है। उद: डॉ. रामकुमार वर्मा का "कहाँ से कहा" और भगवती-चरण वर्मा का "सबसे बड़ा आदमी"।

४. गंभीर शैली के एकांकी हल्की शैली के एकांकीयों से भिन्न हैं।

५. बौध्दीक और काव्यात्मक एकांकीयों में बुध्दिवाद, कल्पना, कवित्व और भावुकता की प्रधानता रहती है।

६. समस्यामुलक एकांकी अपना अलग वर्ग बनाते प्रतीत होते है। इनमें प्रस्तुत समस्याएँ बहुधा सामाजिक या राजनीतिक या यौन होती है।

७. दु:खान्त और सुखान्त के भी दो भेद माने जाते हैं। ये बड़े नाटकों में भी मिलते हैं।

प्रस्तुत डॉ. सत्येन्द्र के एकांकीयों के वर्गीकरण के संबंध में डॉ. सिध्दनाथकुमार अपने प्रबंध में लिखते हैं, "मूलवृत्ति, वाद और विषय के संबंध में डॉ. सत्येंद्रने जो वर्गीकरण किया है इसके संबंध में हमें विचार करना नहीं है। हम यहाँ पर प्रकार और शैली के आधारपर किए गए वर्गीकरण की वैज्ञानिकता के बारेमें समाधानी नहीं है इसलिए उसके संबंध में विचार करना उचित होगा। क्योंकि उन्होंने "मालवत एकांकी" कहा है वह वास्तव में फ़िचर है ही है, जिसमें नैरेटर की सहायता घटनाओं

और समय के विस्तार को शृंखलाबध्द करने में लि जाती है। पात्र की गौणता-प्रधानता के आधारपर गौणप्रधान एकांकी का प्रकार निरर्थक है, क्योंकि लगबग सभी नाटकों में गौण पात्रों का प्रयोजन मुख्य कथानक में सहाय्यता देना होता है। अलौकिक एकांकी फैन्टसीसे भिन्न नहीं है - फैन्टसी भी काल्पनिक होनेपर वास्तविक जीवन की समस्यायों से ही संबंध रखता है। एकांकी संक्षिप्ति एक प्रकार से बड़े नाटक का स्थान्तर मात्र है शिल्प की दृष्टिसे उपसर्गीय एकांकी का एक प्रकार हो सकता है।"[६३]

"डॉ. रामचरण महेन्द्र ने भी अपने प्रबंध में एकांकी का वर्गीकरण संक्षेप में प्रस्तुत किया है।"[६४] उनके वर्गीकरण में कोई मौलिकता या नवीनता नहीं। उसमें डॉ. नगेंद्र और डॉ. सत्येन्द्र के विचारों की ही आवृत्ती मात्र है।

डॉ. सिध्दनाथकुमार ने एकांकीयों का रचना विधान के दृष्टिसे वैज्ञानिक वर्गीकरण करने का प्रयास किया है। परंतु उसके पहले उन्होने तीन बातोंपर ध्यान रखा है। वह निम्नप्रकार है।"[६५]

१. रचना पध्दति, जिसके अंतर्गत उन्होंने दृश्य संयोजन, कथानक को प्रस्तुत और विकसीत करने की प्रणाली तथा पात्र संख्या को गिनाया है।

२. रंगमंच, रेडिओ आदि के माध्यम जिनके लिए नाटक की रचना होती है।

३. भाषा का वह रूप जो नाटक की अभिव्यक्ति का माध्यम बनता है।

उपर्युक्त पहले विचार के अनुसार सिध्दनाथकुमार ने पाँच प्रकार किए है।

१. एक दृश्य की एकांकी :

इसमें पूरा नाटक एक ही दृश्य में अभिनीत हो जाता है, बीच में कहीं भी दृश्य परिवर्तन की आवश्यकता नहीं पड़ती। इसमें संकलनत्राय का पूर्णत: निर्वाह होता है। इसमें प्रारंभ से अन्त तक केवल दो पात्रों से भी काम चलाया जा सकता है। अनेक पात्र भी आ जा सकते हैं। एकांकी नाटक का यह सबसे सुसंगठीत प्रकार कहा जा सकता है। डॉ. नगेन्द्र ने जिसे झाँकी कहा है, उससे यह प्रकार साम्य रखता है।

२. अनेक दृश्यों का एकांकी :

इसमें दृश्य परिवर्तन अनेक बार होता है। कार्य और प्रभाव की अन्विति तो सब नाटकों के लिए अनिवार्य है, इसमें भी है। लेकिन स्थान और काल की अन्विति कोई आवश्यक नहीं। कथा अनेक स्थानों और दीर्घ कालमें बिखरी हुई हो सकती है। पात्रों की संख्या का इसमें भी कोई बन्धन नहीं।

३. भूमिका और उपसंहारवाले एकांकी :

कुछ एकांकी ऐसे होते हैं, जिनमें प्रारंभ में भूमिका और अन्तसे उपसंहार की व्यवस्था रहती है। नाटक का कथानक दोनों के बीच में रहता है। भूमिका और उपसंहार से संयुक्त हो जाने पर उपर्युक्त दोनों प्रकार इसके अन्तर्गत आ जाते हैं।

४. प्रवक्तायुक्त एकांकी :

जिन एकांकी नाटको में दीर्घकालीन घटनाओं और अनेकानेक स्थानों में विकृत कथानक के बिखारे हुए सुत्रों को जोड़ने के लिए नैरेटर या प्रवक्ता का उपयोग किया जाता है,उन्हे इसप्रकार के अन्तर्गत रखा जा सकता है। प्रवक्ता अपना काम नेपथ्य से भी कर सकते हैं, रंगमंचपर आकर भी ये नाटक में भाग लेनेवाले पात्र भी हो सकते हैं, पर अधिक नाटको में घटनाओं के तटस्थ दृष्टा होते हैं।

५. एकपात्री एकांकी :

एकांकी के जो चार प्रकार पहले आये हैं, उनमें एकसे अधिक पात्र होते हैं, लेकिन ऐसे एकांकी भी हो सकते हैं, और होते हैं, जिनमें केवल एक पात्र आरंभ से अन्त तक अभिनय करता है। अंग्रेजी में इसे "योनोलाग" कहते हैं। अपने यहाँ इसे "स्वगतनाटय" भी कहा जाता है।

आज विज्ञान का युग है। ऐसे युगमें एकांकीयों की अभिव्यक्ति के अनेक माध्यम बन रहे हैं। पहले एकांकीयों का लिखना सिर्फ रंगमंच को सामने रखकर लिखा जाता था। परंतु आज रेडिओ, टेलिव्हिजन, फिल्म आदि नए-नए अभिव्यक्ति साधन आ रहे हैं और इन सबके लिए आज एकांकी लिखा जा रहा है। और इन सभी साधनामें कुछ शिल्पगत अन्तर है। इस दृष्टिसे सिध्दनाथकुमार ने किए एकांकीयों का वर्गीकरण निम्नप्रकार से है।

१] रंगमंचीय एकांकी या रंग एकांकी।

नाटक दृश्यकाव्य है और इसकी सार्थकता अभिनीत एवं प्रदर्शित होने में है। रंगमंच की अपनी सीमाएँ होती है, और रंग एकांकी को उन सीमाओं में बंधाकर चलना पड़ता है। रंग एकांकी को ऐसा कथानक लेना पड़ता है जो रंगमंचपर प्रस्तुत किया जा सके। इसमें दृश्यों की संख्या, लम्बाई परिवर्तन आदि पर ध्यान रखाना पडता है। संवाद, पात्रों के प्रवेश प्रस्थान आदिपर भी ध्यान देने की आवश्यकता होती है। विशेष रूप से एकांकी शिल्पविधि में रंगमंचीय एकांकीपर ही ध्यान दिया जाता है। परंतु इसमें खुले मैदानमें खेले जानेवाले रंग एकांकीयों को भी लिया जा सकता है। जिससे दृश्यविधान, यवनिका आदि के बन्धन से मुक्त हो जाता है।

२] पाठ्य एकांकी :

नाटक एवं एकांकी को सुनते ही हमारे सामने दृश्यकाव्य का ही विचार सामने आता है। परंतु नाटक सुना भी जाता है। इस कारण वह श्रव्यकाव्य भी बन जाता है। और जब यही एकांकी या नाटक ने लिखित रूप धारण किया और उसे लोग पढ़ने लगे तब वह पाठ्य काव्य भी बन गया है। साथ ही साथ रंगमंच की परंपरा खंडीत हो जाती है तथा साहित्य और रंगमंच का संबंध टूट जाता है, वहाँ पाठ्य नाटकों की रचना होने लगती है। आज तो मुद्रण व्यवस्था के कारण वह आज अनेक पाठकों तक पहुँच रहा है। विशेष रूपसे एकांकी नाटक लिखते समय "रंगमंच और अभिनेयता" पर बिल्कुल ध्यान नहीं रखा जाता। यह संलापों और रंग संकेतों से लिखित कहानी है। अंग्रेजों में इसे "क्लोजेट ड्रामा [ ] कहा जाता है।

३] रेडिओ नाटक :

रेडिओ नाटक और रंगमंचीय नाटक बिल्कुल भिन्न है। इनके स्वरूप विधान में भी बहुत भिन्नता है। अत: यह प्रश्न खड़ा हो जाता है कि रेडिओ एकांकी है या नहीं ? परंतु रेडिओ नाटक एक दृश्य के भी होते हैं और साथ ही १५ से लेकर ४५ मिनिटों में खत्म भी होते है अत: इन्हे एकांकी कहने में कोई संदेह नहीं होगा। और जो रेडिओ नाटक दृश्यों की संख्या और रूपरेखा आदि का बन्धन स्विकार नहीं करते वे अनेक दृश्यवाले एकांकी के अंतर्गत माने जा सकते है।

४] टेलिव्हिजन नाटक या एकांकी :

टेलिव्हिजन नाटक यह दृश्य-श्राव्य एकांकी है। और इसपर रंगमंचीय, रेडिओ फिल्म आदि का प्रभाव दिखाई देता है। टेलिव्हिजन नाटक चित्रों और ध्वनियों का संयोजन कर नाटक को प्रदर्शन स्थलसे दूर दूर तक के दर्शक तक पहुँचा देता है।

५] फिल्म नाटक :

चल चित्रोंपर जो फिल्म नाटक प्रदर्शन होते हैं, वे भी एक प्रकार से एकांकी नाटक ही है। इसका स्वरूप विधान अन्य नाटयप्रकारों से बिल्कुल भिन्न है।

अन्त में भाषा के अनुसार एकांकीयों का वर्गीकरण डॉ. सिध्दनाथकुमार निम्नप्रकार से करते हैं। इसप्रकार के एकांकी नाटक गदय होते तो कभी पदय, कभी गदय-पदय, तो कभी सिर्फ गेय नाटक इस दृष्टिसे एकांकीयों निम्न किए है।

१] गदय नाटक :

इसमें आरंभ से लेकर अन्ततक समुचा कथोप-कथन गदय में ही होता है। यथार्थवादी दृष्टिसे गदय को ही नाटक का स्वाभाविक माध्यम माना जाता है।

२] काव्य/पदय नाटक :

इसमें प्रारंभ से लेकर अंत तक समुचा कथोप-कथन पदय में होता है। जीवन के रागात्मक अभिव्यक्ति के लिए काव्य ही उचित माध्यम है।

३] गदय-पदय मिश्रीत नाटक :

इसमें गदय और पदय दोनों भाषा माध्यमों का उपयोग किया जाता है। परंतु यदि इसमें गदय की प्रधानता हो तो उसे गदय नाटक और पदय की प्रधानता हो तो पदय नाटक कहा जाता है।

४] संगीत नाटक :

इसमें गेय गीतों की प्रधानता रहती है। अर्थात इसके संलाप गाकर प्रस्तुत किए जाते है। इसे संगीतिका भी कहा जाता है।

इसप्रकार डॉ. सिध्दनाथकुमारजीने अपनी दृष्टिसे एकांकीयों के प्रकार प्रस्तुत किए हैं।

निष्कर्ष :-

अत: इस अध्याय के द्वारा यह स्पष्ठ होता है कि मानव इतना गतिशील बनता जा रहा है कि एकांध क्षेत्र में ही उसे ज्यादा समय देना मुश्किल-सा हो गया है। मनोरंजन के लिए तो ज्यादा समय व्यय करना यह तो और कठिन बात है। परिणामस्वरूप ही कहानी, एकांकी आदि का जन्म हुआ है।

नाटक में अनेक घटनाओं को जोडकर उसका निर्माण किया जाता है। परंतु एकांकी में किसी एकही घटना या प्रसंग को स्पष्ट किया जाता है। अत: जीवन की किसी एक घटना याप्रसंग को पाँच से लेकर पैतालीस मिनिटों की अवधी में पूरी सघनता और अन्विति के साथ एक या अनेक दृश्यों में कथावस्तु को प्रस्तुत किया जाता है उसे एकांकी माना जाता है। इस एकांकी के कथावस्तु, पात्र, संवाद उद्देश्य, देशकाल, भाषाशैली, रंगनिर्देश, संकलनत्राय और संघर्ष आदि एकांकीयों के "तत्व" हमारे सामने प्रकट होते हैं।

एकांकीयों के प्रकारों संबंधी जब हम विचार करते हैं तो अनेक विद्वानोंने अपनी-अपनी प्रतिमा के अनुसार एकांकीयों के अनेक प्रकारों को प्रस्तुत किया है। परंतु डॉ. सिध्दनाथकुमारजी ने डॉ. सत्येंन्द्र के मूलवृत्ती, वाद और विषय के आधार-पर एकांकीयों के प्रकारों को मान्य करके, रचना पध्दति के अनुसार, रंगमंच और रेडिओ आदि माध्यमों के अनुसार, भाषा रूप के अनुसार, जो एकांकीयों के प्रकार प्रस्तुत किए हैं वे पूरीतरह से स्पष्ठ और वैज्ञानिक लगते हैं।

एकांकीयों के संबंध में ऐसा माना जाता है कि, एकांकी यह नाटयप्रकार पाश्चात्यों की देन है। परंतु प्राचीन भारतीय विद्वानों ने नाटक के अंतर्गत भाण, प्रहसण, व्यायोग और अंक ये जो प्रकार स्पष्ठ किए हैं वे एकांकी ही है सिर्फ उसकी अलग-सी परिभाषा प्रस्तुत नहीं की है। इसलिए एकांकी पाश्चात्य की देन मानना एक भूल-सी है।

÷ टिप्पणियाँ ÷

अध्याय पहला

एकांकी सिद्धांत और प्रकार :

०१. प्रो. रामचरण महेंद्र, एकांकी और एकांकीकार, पृ. १०।
०२. वीरेंद्रकुमार मिश्र, एकांकी उद्भव और विकास, पृ. ४।
०३. वहीं, पृ. ५, ६।
०४. डॉ. सिध्दनाथकुमार, हिन्दी एकांकी शिल्पविधि का विकास, पृ. ३० से उद्धृत।
०५. वहीं, पृ. ३० से उद्धृत।
०६. वहीं, पृ. ३० से उद्धृत।
०७. वहीं, पृ. ४८ से उद्धृत।
०८. वहीं, पृ. ४५ से उद्धृत।
०९.
१०. डॉ. सिध्दनाथकुमार, हिन्दी एकांकी शिल्पविधि का विकास, पृ. ४५ से उद्धृत।
११. अब्दुलरशीद शेख, हिन्दी-गुजराती एकांकी का विकासात्मक एवं तुलनात्मक अध्ययन पृ. १२।
१२. वहीं, पृ. १७ से उद्धृत।
१३. वीरेंद्रकुमार मिश्र, एकांकी उद्भव और विकास, पृ. ११ से उद्धृत।
१४. वहीं, पृ. ११ से उद्धृत।
१५. प्रो. रामचरण महेंद्र, एकांकी और एकांकीकार पृ. ।
१६. वीरेंद्रकुमार मिश्र, एकांकी उद्भव और विकास, पृ. १२ से उद्धृत।
१७. वहीं, पृ. ११ से उद्धृत।
१८. डॉ. अब्दुलरशीद शेख, हिन्दी एकांकी का विकासात्मक एवं तुलनात्मक अध्ययन, पृ. १८ से उद्धृत।
१९. वीरेंद्रकुमार मिश्र, एकांकी उद्भव और विकास पृ. १२ से उद्धृत।
२०. वही, पृ. ५४, ५५ से उद्धृत।
२१. वहीं, पृ. ५५ से उद्धृत।

२२. वही, पृ. ५७ से उद्धृत ।

२३. अब्दुलरशीद शेख, हिन्दी गुजराती एकांकी का विकासात्मक एवं तुलनात्मक अध्ययन, पृ. १९ ।

२४. वहीं, पृ. १९ ।

२५. वहीं, पृ. १९ ।

२६. वहीं, पृ. १९ ।

२७. वहीं, पृ. १९ ।

२८. वहीं, पृ. १९ ।

२९. डॉ. सिध्दनाथकुमार, हिन्दी एकांकी शिल्पविधि का विकास, पृ. ६० से उद्धृत ।

३०. वही, पृ. ६० से उद्धृत ।

३१. वही, पृ. ६० से उद्धृत ।

३२. डॉ. सिध्दनाथकुमार, हिन्दी एकांकी शिल्पविधि का विकास, पृ. ६० ।

३३. वहीं, पृ. ६०, ६१ ।

३४. वहीं, पृ. ६१ ।

३५. वहीं, पृ. ६२ ।

३६. डॉ. अब्दुलरशीद शेख, हिन्दी गुजराती एकांकी का विकासात्मक एवं तुलनात्मक अध्ययन, पृ. २४ से उद्धृत ।

३७. डॉ. सिध्दनाथकुमार, हिन्दी एकांकी शिल्पविधि का विकास, पृ. ६३ से उद्धृत ।

३८. वहीं, पृ. ६३ से उद्धृत ।

३९. वहीं, पृ. ६४ से उद्धृत ।

४०. डॉ. सिध्दनाथकुमार, हिन्दी एकांकी शिल्पविधि का विकास, पृ. ६४ ।

४१. वहीं, पृ. ६५ से उद्धृत ।

४२. वहीं, पृ. ६५ से उद्धृत ।

४३. वहीं, पृ. ६५ से उद्धृत ।

४४. डॉ. सिध्दनाथकुमार, हिन्दी एकांकी शिल्पविधि का विकास पृ. ६७ ।

४५. वहाँ, पृ. ६७ से उद्धृत ।

४६. डॉ. सिध्दनाथकुमार, हिन्दी एकांकी शिल्पविधि का विकास, पृ. ६७, ६८ से उद्धृत ।

४७. वहीं, पृ. ६८ से उद्धृत ।

४८. वहीं, पृ. ६९ से उद्धृत ।

४९. वहीं, पृ. ६९ से उद्धृत ।

५०. वहीं, पृ. ६९ से उद्धृत ।

५१. वहीं, पृ. ७१ से उद्धृत ।

५२. वहीं, पृ. ७१ से उद्धृत ।

५३. डॉ. अब्दुलरशीद शेख, हिन्दी-गुजराती एकांकी का विकासात्मक एवं तुलनात्मक अध्ययन, पृ. २६, २७ से उद्धृत ।

५४. डॉ. सिध्दनाथकुमार, हिन्दी एकांकी शिल्पविधि का विकास, पृ. ७२ से उद्धृत ।

५५. डॉ. अब्दुलरशीद शेख, हिन्दी-गुजराती एकांकी का विकासात्मक एवं तुलनात्मक अध्ययन, पृ. २७ से उद्धृत ।

५६. डॉ. सिध्दनाथकुमार, हिन्दी एकांकी शिल्पविधि का विकास, पृ. ८२ से उद्धृत ।

५७. वहीं, पृ. ८३ से उद्धृत ।

५८. वहीं, पृ. ८३ से उद्धृत ।

५९. वहीं, पृ. ८३ से उद्धृत ।

६०. वहीं, पृ. ८४ से उद्धृत ।

६१. वहीं, पृ. ८४ से उद्धृत ।

६२. वहीं, पृ. ८४ से उद्धृत ।

६३. वहीं, पृ. ८६ ।

६४. डॉ. रामचरण महेंद्र, हिन्दी एकांकी उद्भव और विकास, पृ. ३८, ३९ ।

६५. डॉ. सिध्दनाथकुमार, हिन्दी एकांकी शिल्पविधि का विकास, पृ. ८६ से ८९ तक ।